कराया गया भी अनुभाग विपरिणामित (विपरिणामना युक्त) होता है। अतः अनुभागविपरिणामना को अनुभागसंक्रम जैसा ही समझना चाहिए।

अनुभागविभक्ति—तस्स अणुभागस्स विहत्ती भेदो पबंधो जम्हि अहियारे परूविज्जदि सा अणुभागविहत्ती णाम। (जयध. ५, पृ. २)।

जिस अधिकार में कर्मों के अनुभागगत भेद या उसके विस्तार का वर्णन किया जाय उसे अनुभागविभक्ति नामका अधिकार कहते हैं।

अनुभागसत्कर्मस्थान—जमणुभागट्ठाणं घादिज्जमाणं बन्धाणुभागट्ठाणेण सरिसं ण होदि, बन्धअट्ठंक-उव्वंकाणं विच्चाले हेट्ठिमउव्वंकादो अणंतगुणं उवरिमअट्ठंकादो अणंतगुणहीणं होदूण चेट्ठदि तमणुभागसंतकम्मट्ठाणं णाम। (धव. पु. १२, पृ. ११२)।

जो घाता जाने वाला अनुभागस्थान बन्धानुभाग-स्थान के सदृश नहीं होता, किन्तु बन्ध सम्बन्धी अष्टांक और ऊर्वंक के मध्य में अर्थात् अनन्तगुण वृद्धि और अनन्तभाग वृद्धि के अन्तराल में अधस्तन ऊर्वंक से अनन्तगुणित और उपरिम अष्टांक से अनन्तगुणहीन होकर अवस्थित होता है उसे अनुभागसत्कर्मस्थान कहते हैं।

अनुभागसंक्रम—१. अणुभागो ओकड्डिदो वि संकमो, उक्कड्डिदो वि संकमो, अण्णपयडिं णीदो वि संकमो। (क. पा. चू. पृ. ३४५; जयध. भा. ५, पृ. २; धव. पु. १६, पृ. ३७५)। २. अणुभागो णाम कम्माणं सगकज्जुप्पायणसत्ती, तस्स संकमो सहावंतरसंकंती। सो अणुभागसंकमो त्ति वुच्चइ। (जयध. ९, पृ. २)। ३. तत्थट्ठपयं उव्वट्टिया व ओवट्टिया व अणुभागा। अणुभागसंकमो एस अन्नपगइं णिया वावि। (कर्मप्र. संक्रमक. ४६)। ४. उद्वर्तिताः प्रभूतीभूता यद्वाऽपवर्तिता ह्रस्वीकृता अथवा अन्यां प्रकृतिं नीता अन्यप्रकृतिस्वभावेन परिणमिता अविभागा अनुभागाः, एष सर्वोऽप्यनुभागसंक्रमः। (कर्मप्र. मलय. वृ. सं. क. ४६)। ५. पदद्ग्रहप्रकृत्यनुयायिरसापादनं त्वनुभागसंक्रमः। (पंचसं. मलय. वृ. संक्रम. गा. ३३)।

१ अनुभाग का जो अपकर्षण, उत्कर्षण अथवा अन्य प्रकृति रूप परिणमन होता है उसे अनुभागसंक्रम कहते हैं।

अनुभागह्रस्व—सव्वासिं पयडीणं अप्पप्पणो जहण्णाणुभागट्ठाणं बंधमाणस्स अणुभागरहस्सं। (धव. पु. १६, पृ. ५११)।

जीव के द्वारा बांधा गया जो सब प्रकृतियों का अपना जघन्य अनुभागस्थान है उसे अनुभागह्रस्व कहते हैं।

अनुभागोदीरणा—तथैव (वीर्यविशेषादेव) प्राप्तोदयेन रसेन सहाप्राप्तोदयो रसो यो वेद्यते साऽनुभागोदीरणेति। (स्थाना. अभय. वृ. ४, २, २९६ पृ. २१०)।

वीर्यविशेष से उदय को प्राप्त हुए रस के साथ जो अनुदयप्राप्त रस का वेदन होता है उसे अनुभागोदीरणा कहते हैं।

अनुभाव—देखो अनुभव। १. विपाकोऽनुभावः। (श्वे. त. सू. ८–२२)। २. सर्वासां प्रकृतीनां फलं विपाकोदयोऽनुभावः। (त. भा. ८–२२)। ३. अनुभावो यो यस्य कर्मणः शुभोऽशुभो वा विपाकः। (उत्तरा. चू. ३३, पृ. २७७)। ४. विपचनं विपाकः—उदयावलिकाप्रवेशः, कर्मणां विशिष्टो नानाप्रकारो वा पाको विपाकः, अप्रशस्तपरिणामानां तीव्रः शुभपरिणामानां मन्दः। यथोक्तकर्मविशेषानुभवनम् अनुभावः। × × × अथवाऽऽत्मनाऽनुभूयते येन करणभूतेन बन्धेन सोऽनुभावबन्धः। (त. भा. सिद्ध. वृ. ८–२२)। ५. अनुभावो विपाकस्तीव्रादिभेदो रसः। (समवा. अभय. वृ. सू. ४)।

देखो अनुभव।

अनुभावबन्ध—देखो अनुभागबन्ध। १. अध्यवसायनिर्वर्तितः कालविभागः कालान्तरावस्थाने सति विपाकवत्ता अनुभावबन्धः समासादितपरिपाकावस्थस्य बदरादेरिवोपभोग्यत्वात् सर्व-देशघात्येक-द्वि-त्रि-चतुःस्थानशुभाशुभतीव्र-मन्दादिभेदेन वक्ष्यमाणः। (त. भा. सिद्ध. वृ. ८–४)। २. अनुभावबन्धो यस्य यथाऽऽयत्यां विपाकानुभवनमिति। (श्रावकप्र. टी. गा. ८)। ३. तस्यैव च स्निग्ध-मधुराद्येक-द्विगुणादिभावोऽनुभावः। यथाह—तासामेव विपाकनिबन्धो यो नामनिर्वचनभिन्नः। स रसोऽनुभावसंज्ञस्तीव्रो मन्दोऽथ मध्यो वा॥ (त. भा. हरि. वृ. ८–४)। ४. अनुभावबन्धस्तु—कृतस्थितिकस्य स्वस्मिन् काले परिपाकमितस्य वा याऽनुभूयमानावस्था शुभाशुभाकारेण घृत-क्षीर-कोशातकीरसोदाहृतिसाम्यात् सोऽनु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावबन्धः। (**त. भा. सिद्ध. वृ. १–३**); अनुभूयते येन करणभूतेन बन्धेन सोऽनुभावबन्धः। (**त. भा. सिद्ध. वृ. ८–२२**)। ५. अनुभावो विपाकस्तीव्रादिभेदो रसस्तस्य बन्धोऽनुभावबन्धः। (**समवा. अभय. वृ. ४; स्थाना. अभय. वृ. ४, २, २९६**); कर्मणो देश-सर्वघातिशुभाशुभतीव्रमन्दादिरनुभावबन्धः। (**स्थाना. अभय. वृ. ४, २, २९६**)। ६. अनुभावबन्धस्तूच्यते—तत्र शुभाशुभानां कर्मप्रकृतीनां प्रयोगकर्मणोपात्तानां प्रकृति-स्थिति-प्रदेशरूपाणां तीव्रमन्दानुभावतयाऽनुभवनमनुभावः। स चैक-द्वि-त्रि-चतुःस्थानभेदेनानुगन्तव्यः। (**आचारांग शी. वृ. २, १, गा. १९२-९३, पृ. ८७**)।

देखो अनुभागबन्ध।

अनुभाषणाशुद्ध प्रत्याख्यान—१. अणुभासदि गुरुवयणं अक्खर-पद-वंजणं कमविसुद्धं। घोसविसुद्धीसुद्धं एदं अणुभासणासुद्धं॥ (**मूला. ७–१४४**)। अणुभासइ गुरुवयणं अक्खर-पद-वंजणेहिं परिसुद्धं। पंजलिमउडो ऽभिमुहो तं जाण अणुभासणासुद्धम्॥ (**आव. भा. २५३**)।

जो गुरु के द्वारा उच्चारित प्रत्याख्यान सम्बन्धी अक्षर (एक स्वर युक्त व्यंजन), पद और व्यंजन (खण्डाक्षर, अनुस्वार व विसर्जनीय आदि); ये जिस क्रम से अवस्थित हैं उसी क्रम से उनका अनुवाद रूप से घोषशुद्ध उच्चारण करना; इसका नाम अनुभाषणाशुद्ध प्रत्याख्यान है।

अनुभूतत्व—अशेषविशेषतः पुनः पुनश्चेतसि तत्स्वरूपाभिभावनमनुभूतत्वम्। (**त. वृ. श्रुत. १–९**)।

विवक्षित वस्तुस्वरूप का तदन्तर्गत समस्त विशेषों के साथ चित्त में बार बार अनुभव करने को अनुभूतत्व कहते हैं।

अनुभ्रष्ट—दर्शनाद् भ्रष्ट एवानुभ्रष्ट इत्यभिधीयते। न हि चारित्रविभ्रष्टो भ्रष्ट इत्युच्यते बुधैः॥ (**वराङ्ग २६–९६**)।

सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हुआ जीव ही वास्तव में अनुभ्रष्ट कहलाता है।

अनुमत—१. स्वयं न करोति, न च कारयति; किन्त्वभ्युपैति यत्तदनुमननम्। (**भ. आ. विजयो. ८१**)। २. प्रयोजकस्य मनसाऽभ्युपगमनमनुमतम्। (**चा. सा. पृ. ३९**); अनुमतमनुज्ञातं × × ×। (**आचा. सा. ५–१५**)।

कार्य को न स्वयं करता है, न कराता, किन्तु करते हुए को मन से अनुमोदना या प्रशंसा करता है; इसे अनुमत कहते हैं।

अनुमतिविरत—१. जो अणुमणणं ण कुणदि गिहत्थकज्जेसु पावमूलेसु। भवियव्वं भावंतो अणुमणविरओ हवे सो दु॥ (**कार्तिके. ३८८**)। २. अनुमतिरारम्भे वा परिग्रहे वैहिकेषु कर्मसु वा। नास्ति खलु यस्य समधीरनुमतिविरतः स मन्तव्यः॥ (**रत्नक. ५–२५**)। ३. अनुमतिविनिवृत्त आहारादीनामारम्भाणामनुमननाद् विनिवृत्तो भवति। (**चा. सा. पृ. १९**)। ४. सर्वदा पापकार्येषु कुरुतेऽनुमतिं न यः। तेनानुमननं युक्तं भण्यते बुद्धिशालिना॥ (**सुभा. रत्न. ८४२**)। ५. त्यजति योऽनुमतिं सकले विधौ विविधजन्तुनिकायवितायिनि। हुतभुजीव विबोधपरायणो बिगलितानुमतिं निगदन्ति तम्॥ (**धर्मप. २०–६१**)। ६. आरम्भसन्दर्भविहीनचेताः कार्येषु मारीमिव हिंस्ररूपाम्। यो धर्मसक्तोऽनुमतिं न धत्ते निगद्यते सोऽननुमन्तृमुख्यः॥ (**अमित. श्रा. ७–७६**)। ७. पुट्ठो वा ऽपुट्ठो वा णियगेहिं परेहिं च सगिहकज्जम्मि। अणुमणणं जो ण कुणइ वियाण सो सावओ दसमो॥ (**वसु. श्रा. ३००**)। ८. नवनिष्ठापरः सोऽनुमतिव्युपरतः सदा। यो नानुमोदेत ग्रन्थमारम्भं कर्म चैहिकम्॥ (**सा. ध. ७–३०**)। ९. स एव यदि पृष्टो ऽपृष्टो वा निजैः परैर्वा गृहकार्येऽनुमतिं न कुर्यात्तदाऽनुमतिविरत इति दशमः श्रावको निगद्यते। (**त. सुखबो. वृ. ७–३९**)। १०. ददात्यनुमतिं नैव सर्वेष्वैहिककर्मसु। भवत्यनुमतत्यागी देशसंयमिनां वरः॥ (**भावसं. वाम. ५४२**)। ११. यो नानुमन्यते ग्रन्थं सावद्यं कर्म चैहिकम्। नववृत्तधरः सोऽनुमतिमुक्तस्त्रिधा भवेत्॥ (**धर्मसं. श्रा. ८–५०**)। १२. व्रतं दशमस्थानस्थमननुमननाह्वयम्। यत्राहारादिनिष्पत्तौ देया नानुमतिः क्वचित्॥ (**लाटीसं. ७–४४**)।

१ जो समबुद्धि श्रावक आरम्भ, परिग्रह और ऐहिक कार्यों में पूछे जाने पर अनुमति नहीं देता है उसे अनुमतिविरत कहते हैं।

अनुमान—१. साध्याविनाभुनो लिङ्गात्साध्यनिश्चायकं स्मृतम्। अनुमानं तदभ्रान्तम् × × ×॥ (**न्यायाव. ५**)। २. लिङ्गात्साध्याविनाभावाभिनिबोधैकलक्षणात्। लिङ्गिधीरनुमानम् × × ×।